8

भारतीय उपन्यास और लोकजीवन

(प्रसंग: चेम्मीन (मछुआरे) और जंगल के दावेदार)

सत्यकाम

उपन्यास जीवन का बहुरंगी और बहुविध तस्वीर होता है। भारतीय जीवन की व्यापकता और विविधता भारतीय उपन्यास को व्यापक और विविध बनाती है। एक अरब से अधिक आबादी वाले देश में हर पल एक अरब सीने धड़कते हैं और हर धड़कते दिल से एक अलग कृति फूटती है। ऐसा यूँ कि हर मनुष्य अपने-आप में एक अलग व्यक्तित्व है, जीवन है और हर व्यक्ति का जीवन एकं उपन्यास का विषय बन सकता है। इसलिए भारतीय उपन्यासकार के लिए विषय की कोई कमी नहीं क्योंकि यथार्थ रोज उससे अलग-अलग मोड़ों पर अलग-अलग ढंग से टकराता है।

भारतीय उपन्यास ने अपनी पहचान बनाई है और यह पश्चिम के उपन्यासों का पिछलग्गू नहीं है। इसका कारण है लोक जीवन से इसका गहरा जुड़ाव। यही लोक जीवन भारतीय उपन्यास को ठेठ भारतीय बनाता है। भारतीय उपन्यासों में जब भी लोक जीवन की प्रधानता होती है उसे आंचलिकता, प्रादेशिकता, क्षेत्रीयता और न जाने किन-किन अलंकरणों से युक्त किया जाने लगता है। भारतीय उपन्यास अपने स्वरूप में न तो आंचलिक है न ही प्रादेशिक। यहाँ तक कि 'आंचलिक उपन्यास' की नींव रखने वाले फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' भी आंचलिक नहीं है। वस्तुतः आंचलिकता की अवधारणा से ही भ्रम पैदा होता है। ये कृतियाँ लोक जीवन से, भारत की मिट्टी की सुगंध से सुवासित भारतीय धरोहर हैं जिसे अलग-अलग अंचलों में बाँटकर देखना अपनी ही तस्वीर टूटे आइने में देखने के समान होगा। वैसे भी भारतीय परम्परा में टूटे शीशे में मुँह देखना अपशगुन माना जाता है।

भारतीय उपन्यास की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। जिस प्रकार हर आदमी एक दूसरे से अलग है, उसी प्रकार हर उपन्यास एक दूसरे से अलग हैं। सब

विशिष्टता से युक्त हैं। भारतीय उपन्यासकार तकषि शिवशंकर पिल्लै का मलयाली उपन्यास 'चेम्मीन' ऐसा ही एक विशिष्ट उपन्यास है जिसमें केरल के तृक्कुन्तपुषा और नीक्कुन्नम तट पर रहने वाले और समुद्र-माता की कोख से अपना पेट भरने वाले संघर्षरत गरीब मछुआरों की जिंदगी का मर्मस्पर्शी, जीवंत और त्रासद चित्रण किया है। इसमें कोई भाषण नहीं है, बयानबाजी नहीं है बस मछुआरों की जिंदगी के संघर्ष के कुछ पल हैं जिससे जुड़कर पाठक एक परिचित यथार्थ का ही नए 'लोकेल' में सर्वथा भिन्न रूप से साक्षात्कार करता है।

यह सही है कि चेम्मीन मछुआरों के जीवन पर केन्द्रित उपन्यास है पर यह मात्र मछुआरों के जीवन पर केन्द्रित कृति नहीं है बल्कि इसके व्याज से यह उपन्यास एक व्यापक प्रश्न पर विचार और मंथन करने के लिए चिकोटी काटता है, उकसाता है। औरत की अस्मिता और समाज और परिवार में उसका स्थान - यही इस उपन्यास का मुख्य विषय और सवाल है। और उपन्यासकार का यही विजन, ट्रीटमेंट और संवेदना इसे व्यापक धरातल पर खड़ा कर पूरे भारत से ही नहीं पूरे विश्व के सरोकार से जोड़ती है। समाज और परिवार में स्त्री का क्या स्थान है या क्या भूमिका है - मानो अपने इस उपन्यास के जरिए शिवशंकर पिल्लै यह तय करना चाहते हैं, फैसला करना चाहते हैं। वे स्थिति की संजीदगी समझते हैं:

"उस कोठरी का कमजोर दरवाजा खोला जा सकता था। वह टूटकर गिर भी सकता था। लेकिन करुत्तम्मा थी एक ऐसे घेरे के भीतर, जिसकी दीवार किसी भी तरह तोड़ी नहीं जा सकती थी। वह घेरा था समुद्र-माता की संतान के तत्त्व-ज्ञान की ऊँची और मोटी दीवार का घेरा। उसमें न खिड़कियाँ थीं, न दरवाजे। लेकिन क्या शरीर का गर्म खून उसे तोड़ नहीं देगा? इस तरह का घेरा कभी टूटा नहीं है?[1]

एक मछुआरे की महत्वाकांक्षा, प्रेमी युगल में प्रेम की फूटती कोंपल और भारतीय मानस और खासकर मछुआरों के संस्कार में स्त्री की 'पवित्रता' की

---

1 मछुआरे, पृ. 8

अवधारणा से इस उपन्यास की शुरुआत होती है। ये तीनों कोण एक-दूसरे में अनुस्यूत तो हैं ही वे आपस में घात-प्रतिघात करते भी प्रतीत होते हैं जिससे संबंधों में रगड़ पैदा होती है और कई बार चिंगारियाँ उड़ती भी दिखाई देती हैं। पिता की महत्वाकांक्षा और बेटी के प्यार में पिता ही जीतता है और बेटी का प्यार हलाल कर दिया जाता है। करुत्तम्मा चेम्बन नाम के महत्वाकांक्षी और मेहनती मल्लाह की बड़ी लड़की है जो अपनी नाव और जाल खरीदना चाहता है, पर उससे पैसे जुट नहीं रहे हैं। इसी बीच करुत्तम्मा अपने बाल सखा परीकुट्टी यानी छोटा मोतलाली से अपने पिता की नाव और जाल खरीदने की योजना बता देती है और धन की व्यवस्था न हो पाने की बात भी वह सहजता से बता डालती है। हँसी-हँसी में वह उससे पैसे भी माँग लेती है। लेकिन यही ठिठोली उसे इतनी मँहगी पड़ती है कि उसका जीवन और उसका सारा परिवार चामरा हो जाता है। परी अपनी प्रियतमा की इच्छा पूरी करने के लिए अपना सब कुछ लुटा देता है। वह अपनी जमा पूँजी, लागत तोड़कर अपनी प्रियतमा के पिता को धन देता है। बाद में पिता यानी चेम्बन मल्लाह परीकुट्टी को दुत्कार देता है, उसे मछली नहीं देता। परी के पास पैसे नहीं बचे हैं कि वह नकद पैसे देकर मछली खरीदे। उधार देने को कोई तैयार नहीं, नकद उसके पास है नहीं। इस तरह वह दर-दर भटकता है और पैसे-पैसे का मोहताज हो जाता है। प्रेम के लिए किया गया यह बलिदान प्रेमियों का जाना-पहचाना रास्ता है। परंतु इस उपन्यास की विशेषता है कि यह एक युवा प्रेमी-प्रेमियों की रोमांटिक कथा नहीं है बल्कि इसमें टीस, दर्द, त्याग, बलिदान और समर्पण की भावना निहित है। यह प्रेम हवाई नहीं है बल्कि यथार्थ की चट्टानों से टकरा-टकरा कर लहूलुहान होती मुहब्बत है। इसमें प्रेम की भ्रूण हत्या हुई है। करुत्तम्मा और परीकुट्टी का प्रेम 'उसने कहा था' की 'तेरी कुड़मई हो गई' की याद दिलाता है। बचपन के साथी, समुद्र तट पर साथ-साथ खेले बढ़े पर वही खेल, जिसमें प्रेम की बाली फूटने लगी थी, माँ चट्टी की आँखों में खटकने लगती है। एक भारतीय माँ की तरह वह अपनी बेटी को 'स्त्री की पवित्रता' की संकल्पना से परिचित कराती है। हर भारतीय समाज में स्त्री की शुद्धता को लेकर तरह-तरह की कहानियाँ गढ़ी गई हैं। कहीं वह सती है तो कहीं

सावित्री है, कहीं दुर्गा है तो कहीं सीता है और यही आदर्श बेटियों के मन में भरे जाते हैं। चेट्टी के मन में भी प्रेम का कोंपल फूटा होगा, उसकी माँ ने भी उसे यही उपदेश दिया होगा। मछुआरों की जिंदगी जोखिम से भरी होती है। रोज कमाना और खाना उनकी नियति है और प्रतिदिन मौत के मुँह से निकलकर आना उनका पेशा। इसलिए वहाँ यह कथा गढ़ ली गई:

प्रथम मल्लाह जब पहले-पहल लकड़ी के एक टुकड़े पर चढ़कर समुद्र की लहरों और ज्वार-भाटे का अतिक्रमण करके क्षितिज के उस पार गया तब उसकी पत्नी ने तट पर व्रत-निष्ठा के साथ पश्चिम की ओर देखकर खड़े-खड़े तपस्या की। समुद्र में तूफान उठा, शार्क मुँह बाये नाव के पास पहुँचे, ह्वेल ने नाव को पूँछ से मारा और जल की अन्तर-धारा ने नाव को एक भँवर में खींच लिया। लेकिन आश्चर्यजनक रीति से वह मल्लाह सब संकटों से बचकर एक बड़ी मछली के साथ किनारे पर लौट आया। उस तूफान के खतरों से वह कैसे बचा? शार्क उसे क्यों नहीं निगल गया? ह्वेल की मार से उसकी नाव क्यों नहीं डूब गई। भँवर से उसकी नाव कैसे निकल आई? यह सब कैसे हुआ? समुद्र-तट पर खड़ी उस पतिव्रता नारी की तपस्या का ही वह फल था!

समुद्र-माता की पुत्रियों ने इस तपश्चर्या का पाठ पढ़ा। चक्की को भी इस तत्व-ज्ञान की सीख मिली थी। यह भी सम्भव है कि जब चक्की एक नवयुवती थी तब एक मोतलाली ने उसे भी आँख गड़ाकर देखा होगा और चक्की की माँ ने उस समय उसको भी समुद्र-माता की पुत्रियों की तपश्चर्या की कहानी और जीवन का तत्व-ज्ञान समझाया होगा।

चक्की ने करुतम्मा की गलती समझी हो या नहीं उसने आगे कहा, "बिटिया, अब तू छोटी बच्ची नहीं है। एक मल्लाहिन हो गई है।" परीकुट्टी के शब्द 'बड़ी मल्लाहिन' करुतम्मा के कानों में गूँज गये।

चक्की ने आगे कहा, "इस महासागर में सब-कुछ है बिटिया, सब कुछ। इसमें जाने वाले लोग कैसे लौटकर आते हैं यह तुझे क्या मालूम! तट पर उनकी स्त्रियों के पवित्रता से रहने से ही यह होता है। वे पवित्रता का पालन न करें

तो मल्लाह नाव सहित भँवर में पड़कर खत्म हो गया। मछुआरों का जीवन वास्तव में तट पर रहने वाली उनकी स्त्रियों के हाथ में ही है।"[2]

फिर यदि लड़का विधर्मी हो तब तो सर्वनाश। परीकुट्टी मुसलमान है। वह मछुआरों के पड़ोस में रहता है। मछुआरों से मछली खरीदकर उसे सुखाना और बाजार ले जाकर बेचना उनका मुख्य धंधा है। इसलिए मछुआरों से उनका रोज का लेन-देन है। पर यह लेन-देन धंधे तक ही सीमित है, उनके बीच कोई सामाजिक रिश्ता नहीं है। मछुआरे उनसे दूर-दूर रहा करते हैं। उनके पास आने पर सबकी निगाहें संदेह से उठ जाती है। करुत्तम्मा के साथ भी यही होता है। उसने एक विधर्मी से दोस्ती की, उससे प्यार किया। इसे इतना बड़ा गुनाह माना गया कि उसकी जिंदगी ही तबाह हो गई। छोटी बहन पंचमी ने जब दीदी के छोटे मोतीलाली के साथ बड़े नाव के पीछे हँसी ठिठोली करने की बात माँ से कही तो चेट्टी के कान सनसना उठे। उसने अपनी बेटी को वही कहा जो हर माँ अपनी बेटी को कहती आई है:

"पवित्रता ही सबसे बड़ी चीज है, बेटी! मल्लाह की असली सम्पत्ति मल्लाहिन की पवित्रता ही है। कभी-कभी छोटे मोतलाली लोग समुद्र-तट को अपवित्र कर देते हैं। पूर्व से स्त्रियाँ झिंगी पीटने और सूखी मछली को बोरों में भरने के लिए आया करती हैं और वह तट को अपवित्र कर देती हैं। समुद्र-तट की पवित्रता का महत्व उन्हें क्या मालूम! वे समुद्र-माता की सन्तान तो हैं नहीं। लेकिन उसका फल भोगना पड़ता है मछुआरों को। .... तट पर रखी हुई बड़ी नावों की आड़ और यहाँ की झाड़ियाँ बहुत खतरनाक जगह है। वहाँ सतर्क रहने की जरूरत है।"

इतना कहकर चक्की ने बेटी को गम्भीरतापूर्वक सावधान किया, "तेरी अब उम्र हो गई है। छाती भर आई है। चेहरा-मोहरा सब हृष्ट-पुष्ट हो गया है। हो सकता है छोटे मोतलाली लोग और दूसरे नासमझ जवान लड़के तेरी ओर नजर गड़ाकर देखें।"

---

2 वही, पृ. 5-6

यह सुनकर करुत्तम्मा चौंक गई। नाव की आड़ में ठीक वही बात हुई थी। उसके मन में उस समय विरोध की जो भावना उठी थी, वह शायद परम्परा से प्राप्त भावना थी। यदि कोई छाती की ओर या नितम्बों की ओर आँख गड़ाकर देखे तो वह बात समुद्र-माता की सन्तान की मर्यादा के विरुद्ध होगी ही।

"बिटिया मेरी, तू समुद्र में तूफान उठाकर मछुआरों की जीविका नष्ट न कर!

करुत्तम्मा डर गई। चक्की ने आगे कहा, "वह तो विधर्मी है। उसे इन बातों की क्या परवाह होगी!"[3]

स्त्री की पवित्रता की यह भारतीय अवधारणा वस्तुतः स्त्री को अपने वश में रखने की पुरानी और आजमाई हुई चाल है। पुरुष यह चाल सदियों से चलता आ रहा है। कभी बाप के रूप में, तो कभी पति के रूप में तो कभी बेटे के रूप में वह स्त्री को छलता और छीलता रहा है, उसकी भावना से खिलवाड़ करता रहा है। कुल मिलाकर पुरुष और पूरा समाज स्त्री का भावनात्मक शोषण करते रहे हैं। 'चेम्मीन' की केन्द्रीय पात्र करुत्तम्मा ने केवल मानसिक स्तर पर विधर्मी मोतीलाली से प्रेम किया है। उसने इस प्रेम का इजहार तक नहीं किया है। यहाँ तक कि खेल-खेल में जब दोनों हँसने लगते हैं और हँसते-हँसते मोतीलाल उसकी छातियों पर नजर गड़ाता है तो वह पहले तो शर्माती है फिर उसकी अभद्रता पर नाराज भी होती है। फिर वह कभी मोतीलाली से नहीं मिलती है। उसका प्रेम मानस से उतरकर भौतिक धरातल पर कभी उतर ही नहीं पाता। मोतीलाली भी उससे बेहद प्यार करता है पर कभी भी वह मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता है। वह समझता है कि वह मुसलमान है और उसकी प्रेयसी हिंदू मल्लाह की बेटी मल्लाहन। वह भावुक है, रोमांटिक है। वह प्रेम में कुछ पाने की आकांक्षा नहीं रखता; सब कुछ दे देना चाहता है। उसके प्रेम में आत्मोत्सर्ग की उदात्तता है जो प्रेम को भक्ति की कोटि में पहुँचा देता है। वह जानता है जिस चाँद को वह हासिल करना चाहता है वह चाँद बहुत दूर है। उसे वह पा नहीं सकता; हाँ, अपने को भुलावे में रखने के लिए थाली के चाँद को पकड़ने

---

3 वही, पृ. 6-7

का प्रयास जरूर कर सकता है। इसीलिए वह समुद्र के घाट पर घूम-घूमकर विरह के गीत गाता फिरता है। वह बिलकुल व्यवहारकुशल नहीं है इसलिए अपनी प्रेयसी के प्रति प्रेम की महत्वाकांक्षा की ढेंकी में अपना सिर डालकर तब तक कुटवाता रहता है जब तक वह मरणासन्न नहीं हो जाता। पर उसकी प्रेयसी उसकी संजीवनी है और वह अपने प्रेम की खातिर जी उठता है। वह न तो अपनी प्रेयसी से प्रणय निवेदन करता है और न ही मुँह खोलकर अपना हक जमाता है। आश्चर्य कि तब भी दोनों के हृदय में प्रेम की पौध पल्लवित होती रहती है। समाज आँखों से हुए इस सम्भाषण को भी असामाजिक मानता है और इसी के आधार पर करुत्तम्मा को अपवित्र घोषित कर दिया जाता है जिससे न केवल उसका वैवाहिक जीवन नष्ट हो जाता है बल्कि सारा परिवार समाप्त हो जाता है।

करुत्तम्मा का प्रेम उसके पिता चेम्बन की महत्वाकांक्षा की बलि चढ़ जाता है। चेम्बन मछुआरा है। वह एक कुशल नाविक और मल्लाह है। वह मेहनती, साहसी और कर्मठ है। ये सभी गुण एक सफल समुद्र-पुत्र में होने चाहिए जो चेम्बन में हैं। उसकी एक महत्वाकांक्षा है नाव और जाल खरीदने की। उपन्यास का आरंभ भी इसी पंक्ति से होता है। करुत्तम्मा अपने प्रेमी परी/परीकुट्टी यानी छोटे मोतीलाली से कहती है, "बप्पा नाव और जाल खरीदने जा रहे हैं।" एक मछुआरे की महत्वाकांक्षा से इस उपन्यास की शुरुआत करने के पीछे एक मकसद है। पिल्लै पाठक को आरंभ में ही मानो बता देना चाहते हैं कि वे उन गरीब मछुआरों की कथा सुनाने जा रहे हैं जिनके लिए अपनी नाव और जाल होना एक सपना होता है। बिलकुल उसी तरह जैसे एक किसान की महत्वाकांक्षा गाय रखने की होती है। नाव और जाल रखने या गाय रखने की महत्वाकांक्षा में कोई फर्क नहीं है। दोनों का संबंध क्रमशः मछुआरों और किसानों की मर्यादा, प्रतिष्ठा और सम्मान से है। जो मछुआरा जाल और नाव खरीद लेता है या जो किसान गाय खरीद लेता है समाज में उसका रुतबा बढ़ जाता है। प्रेमचंद के गोदान के होरी को याद करें। उपन्यास के आरंभ में ही उसके मन में गाय पाने की लालसा धधकती दिखाई देती है और सामने से जब वह भोला महतों को पछाहीं गाय हाँकते देखता है तो उसका मन मचल जाता है। चेम्बन और होरी

दोनों ही समाज के उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जहाँ समाज की मान, मर्यादा और प्रतिष्ठा कहीं नाव खरीदने से, कहीं गाय खरीदने से बढ़ जाती है। प्रेमचंद होरी की गाय खरीदने की इच्छा पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं :

"हर गृहस्थ की भाँति होरी के मन में भी गऊ की लालसा चिरकाल से संचित चली आती थी। वही उसके जीवन का सबसे बड़ा स्वप्न, सबसे बड़ी साध थी। बैंक के सूद से चैन करने या जमीन खरीदने यामहल बनवाने की विशाल आकांक्षाएँ उसके नन्हें हृदय में कैसे समातीं?"[4]

एक मछुआरे और किसान की ये छोटी-छोटी आकांक्षाएँ ही महत्वाकांक्षा का शक्ल अख्तियार कर लेती हैं और उन्हें इसे हासिल करने के लिए काफी जद्दोजहद करनी पड़ती है। उन्हें कर्ज लेना पड़ता है, झूठ बोलना पड़ता है, वादाखिलाफी करनी पड़ती है, स्वार्थी, बेशर्म और बेहया भी बनना पड़ता है। होरी भी भोला महतो की पछाहीं गाय लेने के लिए उसे खूब पटाता है; उसकी खुशामद करता है, उसका विवाह करा देने का वादा करता है। भोला महतो होरी को अपनी गाय 80 रुपये में देने को राजी हो जाता है। पर होरी के पास नकद तो है नहीं। उधार की बात तय होती है। होरी जानता है कि वह यह कर्ज चुका नहीं पाएगा, पहले से उसके ऊपर 400 रुपये का कर्ज है। पर वह रुपये चुकाने का वादा करता है। यह एक किसान की लालसा की पराकाष्ठा है। पर यह उसकी व्यवहारकुशलता भी है। वह जानता है कि जी तोड़ मेहनत करने पर भी वह अपने कर्जे से मुक्त नहीं हो सकता। मुर्दे पर जहाँ एक मन वहाँ सौ मन। 'चेम्मीन' के चेम्पन की महत्वाकांक्षा और इसे हासिल करने का तरीका होरी से काफी हद तक मेल खाता है। चेम्बन के पास इतने पैसे नहीं हैं कि वह नाव और जाल खरीद सके। वह छोटे मोतीलाली उर्फ परीकुट्टी उर्फ परी से कर्ज लेता है। छोटे मोतीलाली के पास कर्ज देने के लिए पैसे नहीं होते फिर भी वह अपने प्यार की खातिर अपनी जमा-पूँजी सब चेम्पन को दे देता है। परी पैसे-पैसे का मोहताज हो जाता है। चेम्बन के मन में शुरु से ही खोट है। वह अहसानफरामोश भी है। अपनी नई जाल और नाव से जब वह पहली बार

---

4 गोदान, प्रेमचंद,

मछली मार कर आता है तो वह परी को मछली उधार देने से मना कर देता है। वह उससे नगद पैसे माँगता है। यहीं उसकी बदनीयती झलकने लगती है। आरंभ से ही उसके नन में खोट है। नाव और जाल का मालिक बनने के बाद तो वह पूरा का पूरा व्यवसायी बन जाता है। व्यवसायी मतलब हृदयशून्य, भावनाओं से परे। वह परी को मछली नहीं देता। उसे भय है कि वह उसे दिए कर्ज में से कटौती कर लेगा। जब उसकी छोटी बेटी छोटी मछली लेने के लिए मचलती है और उसे हाथ लगाती है तो वह उसे धक्का दे देता है। उसे चोट लगती है - मानसिक और शारीरिक दोनों। पर उसे इसका अहसास नहीं। उसे तो मतलब है अपनी मछलियों से। अगर उसकी बेटी मछलियों को छेड़ेगी तो उसका सौदा खराब हो जाएगा। वह मेहनती है, खूब मेहनत करता है, पैसा कमाता है, दाँतों से दबा कर रखता है। अब वह लोगों को कर्ज देने लगता है। वह महाजन बन जाता है। अभी तक उसने परी के पैसे नहीं लौटाए हैं। पर वह लोगों को पैसे उधार देने लगा है। वह महाजन की तरह ही सोचने लगता है। अपने परिवार, मित्रों, पड़ोसियों से उसके व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। उसके चरित्र में हुआ परिवर्तन वस्तुतः वर्गीय परिवर्तन है। इसका बड़ा ही तल्ख चित्रण तकषि शिवशंकर पिल्लै ने किया हैः

समुद्र तट के उस अकाल से फायदा उठाकर चेम्बन और चक्की ने सोने-चाँदी और फूल के बरतन सस्ते दाम पर खरीद लिये। लड़की की शादी के समय बहुत चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।[5]

यह मनोवृत्ति एक खास वर्गीय चरित्र की पहचान है जो दूसरों की मजबूरी और कमजोरी का फायदा उठाते हैं और मुनाफा कमाते हैं। पर चेम्बन बहादुर भी है। जब समुद्र में किसी के जाने की हिम्मत न पड़ती है, लोग दाने-दाने को मोहताज हो रहे हैं, उस विकट स्थिति में वह हिम्मत दिखाता है और कुछ साहसी मछुआरों को लेकर समुद्र में निकल जाता है। उसे सफलता मिलती है। उसके इस साहस से मछुआरों के घर में चूल्हे जलते हैं। पर वहाँ भी उसकी वणिक बुद्धि ही प्रेरणास्रोत हैः

---

5 मछुआरे, पृ. 66

"पैसा लगाकर नाव और दूसरी जरूरी चीजें प्राप्त कर लेने के बाद चुप नहीं बैठा रह सकता। इससे कितना घाटा होगा?"[6]

चेम्बन की महत्वाकांक्षा उसकी बेटी के लिए फाँसी का फंदा बन जाती है। एक दिन एक युवक नाविक चेम्बन की नाव को हरा देता है। वह दूसरे तट का लड़का है। इसका नाम पलनी है। वह पलनी से करुत्तम्मा का विवाह करने का निश्चय करता है। इसके पीछे भी उसकी वणिक बुद्धि ही काम कर रही होती है। वह सोचता है कि गरीब लड़का है, जिसके आगे नाथ न पीछे पगहा है, शादी करने में कोई खर्च न होगा। अपनी इस वणिक बुद्धि से परिचालित होकर वह अपनी बेटी का विवाह दूसरे तट के मछुआरे लड़के से ठीक कर देता है। उसे इस बात की चिंता नहीं कि लोग उसकी निंदा करेंगे। उसे तो इस बात की फिक्र है कि उसके पैसे बचेंगे। विवाह सम्पन्न हो जाता है। लड़की की विदाई का समय आता है। वह अड़ जाता है कि बेटी को विदा नहीं करेगा। पर करुत्तम्मा माँ के आदेश का पालन कर अपने पति के साथ चली जाती है।

चेम्बन इतना दुराग्रही, हठी और मूर्खता की हद तक अड़ियल है कि वह अपनी बेटी से संबंध विच्छेद का प्रण ले लेता है और अंत-अंत तक अपनी जिद से चिपका रहता है। चट्टी की मृत्यु पर वह करुत्तम्मा को खबर नहीं भिजवाता, बुलाने की बात तो दूर रही। वह अपने हठ के आगे अपनी बेटी का परित्याग कर देता है।

करुत्तम्मा के दाम्पत्य जीवन का आरंभ सामान्य ढंग से होता है। करुत्तम्मा अपना घर जुटाने में लग जाती है और पलनी पैसा जुटाने में। पलनी फिजूलखर्जी है, अल्हड़ है, उन्मुक्त है। अभी तक आसमान ही घर था और समुद्र ही जीवन। करुत्तम्मा के आ जाने से उसका जीवन व्यवस्थित होने लगता है। लेकिन उसके प्रेम की काली छाया यहाँ भी उसका पीछा नहीं छोड़ती। छोटे समाज में छोटी बात भी बहुत बड़ी बना दी जाती है। करुत्तम्मा कलंकिनी घोषित कर दी जाती है। पलनी अपमानित महसूस करता है। करुत्तम्मा उसके समक्ष सत्य

6 वही, पृ. 69

प्रकट करती है। पलनी उदार हृदय युवक है। वह सामान्य होने लगता है कि तभी नियति का थपेड़ा उसकी जीवन की नौका को एक ऐसा थपेड़ा मारती है कि उसका दाम्पत्य जीवन छिन्न भिन्न हो जाता है।

मृत्युशय्या पर पड़ी चट्टी छोटे मोतीलाली को अपने पास बुलाकर उससे शपथ लेती है कि आज से वह करुत्तम्मा को अपनी छोटी बहन मानेगा। देह छोड़ रही आत्मा के समक्ष वह इंकार नहीं कर पाता। इसी भातृ-भाव से वह माँ की मृत्यु की सूचना देने करुत्तम्मा के तट पर चला जाता है। करुत्तम्मा उसके आगमन को अपने विनाश के रूप में देखती है। वही होता है जिसकी आशंका थी। छोटा समाज इस सहज रिश्ते को पचा नहीं पाता। घर से कोई क्यों नहीं आया?..... एक मुसलमान संदेश लेकर क्यों आया? ..... जैसे प्रश्न पलनी और करुत्तम्मा के कानों को बेधने लगते हैं और एक दिन ऐसा भी आता है कि जिस नाविक को हर मल्लाह अपनी नाव पर ले जाने को लालायित रहता था, आज उसी नाविक को मल्लाह तट पर अकेला छोड़कर समुद्र में चले जाते हैं। पलनी का मन हाहाकार कर उठता है। वह इस बहिष्कार को बर्दाश्त नहीं कर पाता। पर पलनी और करुत्तम्मा इस संकट का मिलकर सामना करते हैं। पलनी खुद अकेले दम पर मछली मारने लगता है। पर वह अंदर ही अंदर टूट जाता है और सागर अपने बेटे को अपने आगोश में समा लेता है।

'चेम्मीन' यानी मछुआरे एक 'बंद समाज' की खुली दास्तान हैं। परम्पराओं, रूढ़ियों और मान्यताओं से बंधा समाज अपने सदस्यों, खासकर महिलाओं को तनिक भी छूट नहीं देता। अशिक्षित और निरक्षर समाज भी रूढ़ियों और अंधविश्वासों से जकड़ा होता है। समाज का कोई सदस्य, खासतौर पर स्त्री, यदि इस 'मर्यादा' का उल्लंघन करने का प्रयास करती है तो समाज उसे तिरस्कृत करता है। महिलाओं को तुरंत भ्रष्ट, अशुद्ध और अपवित्र घोषित कर दिया जाता है।

मछुआरे गरीब हैं। उनका जीवन कर्ज में डूबा हुआ है। फिर भी वे एक दूसरे की टांग खींचने से बाज नहीं आते। दायरा छोटा है अतः ऊपर उठने वाले को नीचे खड़ा व्यक्ति खींचने का प्रयत्न करता है। समाज वहीं का वहीं खड़ा रह जाता

है। चेम्बन नाव और जाल खरीदने का जुगाड़ करता है तो सब उसकी निंदा करते हैं कि अभी बेटी का विवाह किया नहीं और कर्ज लेकर नाव-जाल खरीद रहा है। जब वह किसी की परवाह नहीं करता तो उसके 'शुभेक्षु' घटवार से शिकायत कर आते हैं। परम्परा के मुताबिक कोई भी नया काम करने के पहले घटवार से औपचारिक अनुमति लेनी पड़ती है और इसके लिए कुछ धन भी अर्पण करना होता है। चेम्बन इसकी जरूरत नहीं समझता है। लोगों को एक रास्ता दिखाता है। पर स्वार्थांध समाज इसे सह नहीं पाता है। उसे दिखता है कि एक व्यक्ति समाज के नियम तोड़ रहा है और यह पैनी निगाह समाज को बचाने के लिए नहीं है। यह गीध दृष्टि किसी को आगे न बढ़ने देने के निमित्त है। इसमें घटवार का कम योगदान नहीं है। घटवार का अस्तित्व तभी तक कायम है जब तक समाज जड़ है। वह सत्ताधारी है। सत्ताधारी अपने अधीनस्थों को कभी पनपने का मौका नहीं देता। उसे परम्परा, रूढ़ि और रीति-रिवाजों के बंधन में बाँधकर अपने वश में रखने का उपक्रम करता रहता है। पर चेम्पन व्यावहारिक बुद्धिसम्पन्न व्यक्ति है। वह खतरा भाँपकर घटवार के पास जाकर माफी माँगता है और अपनी नाव धूमधाम से समुद्र में उतारता है। उसकी व्यावहारिक बुद्धि का पता उस समय भी चलता है जब वर पक्ष से घटवार धन की माँग करता है। परम्परानुसार यह धन लड़की के पिता को लड़के का पिता भेंट करता है। अकिंचन पलनी के पास देने के लिए एक पैसा भी नहीं है। चेम्पन अपने घर की मर्यादा रखने के लिए एकांत में जाकर पलनी को पैसे देता है तब जाकर बात सुलटती है। उपन्यास मछुआरों के जीवन के दुख दर्द और खींचतान से भरा हुआ है। मछुआरों का रोज कुँआ खोदना और रोज पानी पीना संघर्ष से भरे जीवन का द्योतक है। मछुआरे रोज जीवन और मृत्यु से संघर्ष करते हैं। जैसे एक योद्धा या पाइलट, अपने अभियान पर निकलते हैं तो प्रतिदिन उनके माथे पर तिलक लगाया जाता है क्योंकि रोज वे मौत के अंधे कुएँ में प्रवेश करते हैं। मछुआरों का जीवन भी एक योद्धा का जीवन है। वह पाइलट की तरह रोज 'सॉर्टी' पर जाता है और उनकी पत्नियाँ तट पर खड़ी इन्तजार करती हैं। नाव दिखते ही रोज उनकी आँखों में चमक उभरती है, पति को उतरता न देखकर उनकी चमक फिर कहीं अंधकार में खो जाती है और वे दूसरी नाव का इन्तजार करती हैं। कभी-कभी नाव वापस भी नहीं आती।

मछुआरों के जीवन के कई पक्ष इस उपन्यास में आए हैं, पर यह उपन्यास का विषय नहीं है। उपन्यास का मूल कथ्य है- एक लड़की का अपने समाज से विद्रोह। वह एक 'विधर्मी' से प्यार करती है। वह अपनी शादी का भी विरोध नहीं करती। वह अच्छी मल्लाहिन बनने का भी प्रयत्न करती है। वह अपने पति के प्रति पूर्ण निष्ठावान है। पर वह अपने पहले प्यार को भूल नहीं पाती। उसका पहला प्यार पवित्र है, उसमें किसी भी प्रकार की 'मर्यादा' का उल्लंघन नहीं है। फिर भी समाज उसे तिरस्कृत करता है। वह समाज से मानसिक स्तर पर ही सही, परंतु लड़ती अवश्य है। एक लड़की के हाथ में परिवर्तन की पतवार थमाकर तकषी शिवशंकर पिल्लै ने साहस भरा काम किया है :

उसका मल्लाह अकेला समुद्र में गया था। वह दूर समुद्र में काँटा डाल रहा था। उस समय करुत्तम्मा को प्रथम मल्लाहिन की तरह तट पर खड़ी होकर एकाग्रचित्त से तपस्या करनी चाहिए थी। पर वह पड़ी-पड़ी परी के बारे में सोच रही थी, लेकिन पूर्ण चेतना के साथ नहीं। वह जगी भी नहीं थी। सोई भी नहीं थी। परी बेचारा अच्छा आदमी था। करुत्तम्मा भी उसे प्यार करती थी। यह सब बातें स्पष्ट हो गईं। करुत्तम्मा जीवन भर परी को नहीं भुला सकती थी। परी उसका था और वह परी की थी।[7]

अंततः परी और करुत्तम्मा सभी सामाजिक बंधनों और मर्यादाओं को लांघकर आलिंगनबद्ध हो जाते हैं। उधर पलनी शार्क के साथ संघर्षरत है। एक बड़ा शार्क उसके काँटे में फँसा है, जिससे वह जूझ रहा है। तब तक वह भयंकर भँवर में फँसता है और उसकी अजेय शक्ति में सुराख होने लगता है। "जोर से बिजली कड़की। भयानक मेघ-गर्जन हुआ। ऐसा लगा मानो आसमान ही टूट पड़ा।" वह जोर से चिल्लाया- 'करुत्तम्मा'। फिर वही परम्परा की दुहाई:

"उसने करुत्तम्मा को क्यों पुकारा? उसमें कोई उद्देश्य था न? समुद्र में जाने वाले मल्लाह की रक्षा करने वाली देवी घर में बैठी मल्लाहिन ही है न? उसने करुत्तम्मा से उस आदि मल्लाहिन की तरह तपस्या करने की माँग की। वह

7 वही, पृ. 238

प्रथम मल्लाह आँधी-पानी में फँस जाने पर भी, अपनी मल्लाहिन की तपस्या के फलस्वरूप बचकर घर लौट सका था न। पलनी को भी उसी प्रकार रक्षा पाने का विश्वास था। उसकी भी मल्लाहिन थी। उसने पिछले दिन भी तो प्रतिज्ञा की थी। वह जरूर तपस्या करती होगी।[8]"

लेकिन करुत्तम्मा तो परी के आलिंगन में थी। प्रेम में खोए युगल प्रेमी को समुद्र अपने साथ बहाकर ले गया। दूसरे दिन उन दोनों की आलिंगनबद्ध निष्प्राण देह मिली। क्या निष्कर्ष निकालें इस अंत का? मल्लाहिन अपने मल्लाह की रक्षा नहीं कर सकी। भँवर में फँसे पलनी ने "करुत्तमा से उस आदि मल्लाहिन की तरह तपस्या करने की माँग की।" पर वह तो समाज की बनायी मर्यादा और घेरे को तोड़ चुकी थी। क्या इसी से समुद्र में ऊफान आया? क्या इसी से पलनी के प्राणों की रक्षा नहीं हो पाई? यह निष्कर्ष संघर्ष कथा को कमजोर बनाता है। पर यह ऊपर से दिखने वाला निष्कर्ष है। यदि कथा के अंतिम अंश को ध्यान से पढ़ें और इसकी प्रतीकात्मकता को बीनने का प्रयत्न करें तो यह निष्कर्ष समाज में आने वाले बदलाव का सूचक बन जाएगा। पलनी, करुत्तम्मा और परी का मरना एक नए युग की शुरुआत का संकेत है। पलनी का मरना अपरिहार्य है क्योंकि कोई पति अपनी पत्नी को दूसरे की बाँहों में नहीं देख सकता। उसका यही अंत होना था। परी और करुत्तम्मा को समाज आलिंगनबद्ध नहीं देख सकता था। इसलिए सागर के गर्भ में समाना उनकी नियति थी। पर समुद्र ने उन्हें किनारे लगा दिया। प्रेम की शक्ति सबसे बड़ी शक्ति होती है। प्रेम निर्भय होता है। प्रेम समाज की उदारता, उन्मुक्तता और प्रगति का परिचायक है। इसे थामने वाले में असीम साहस का संचार होता है। उसे अपने प्राणों का भय नहीं होता। मौत से उसे डर नहीं लगता। यही स्थिति परी और करुत्तम्मा की भी होती है। जटिल प्रश्न यह है कि यदि तीनों मरते नहीं, जिंदा रहते तो क्या होता? क्या पलनी करुत्तम्मा ओर परी के संबंध को स्वीकार करता? क्या समाज इसे स्वीकार करता? परी, करुत्तम्मा और पलनी की मौत के आगोश में सुलाकर उपन्यासकार ने सब कुछ कह भी दिया है और मौन भी रह गया है।

---

8 वही, पृ. 244

जंगल के दावेदार

भारतीय उपन्यास लोक से जुडा है। यही इसे विशिष्ट बनाता है। वर्तमान हो या अतीत दोनों ही स्थितियों में उपन्यासकार हस्तक्षेप करता है और उसे परखता है। उपन्यास केवल अतीत और वर्तमान को हू-ब-हू परोस देने का नाम नहीं है। इसमें औपन्यासिक दृष्टि का विशेष महत्व होता है। इस लिहाज से महाश्वेता देवी का उपन्यास 'अरण्येर अधिकार' यानी 'जंगल के दावेदार' ठेठ भारतीय उपन्यास है। इसमें अपनी अस्मिता और वजूद के लिए उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के खिलाफ लडते, लहूलुहान होते, मार खाते और पिसते जनसमूह और समाज का संघर्षमय चित्रण किया गया है। इसमें एक युद्धरत आदमी और समाज से लेखिका ने पाठकों को रू-ब-रू कराया है। आजादी की लड़ाई में ये हाशिए पर पटके गए लोगों की कहानी है। इतिहास की मुख्य धारा में केवल गांधी जी ही गांधी जी हैं, हाशिए पर चल रहे आंदोलन और उनके नेता को इतिहास के पन्नों में जगह नहीं मिली है। बिरसा मुंडा और उसके नेतृत्व में हुआ आदिवासियों का आंदोलन भारतीय इतिहास के पन्नों में 'बोल्ड' में नहीं अंकित है। जहां इतिहास अपने को थका हुआ और लाचार पाता है, वहाँ से उपन्यास कथ्य और प्रस्तुति का जिम्मा उठाता है और यथार्थ को पूरी तल्खी के साथ पाठकों के समक्ष रख देता है। - पढ़िए, निर्णय कीजिए, कार्यवाई कीजिए।

जो लोग उपन्यास को मात्र एक कलाकृति नहीं बल्कि संघर्ष का एक माध्यम मानते हैं उनके लिए इस प्रकार के उपन्यास आदर्श हैं। लेकिन उपन्यास को कलात्मक सृजन मानने वालों के लिए यह उपन्यास उबाऊ, बेकार और नीरस लगेगा। लेकिन यह मात्र एक कृति नहीं बल्कि 'मिशन' है, लक्ष्य है। यह मिशन है- जन-जन तक आदिवासी विद्रोह की कथा पहुँचाना ताकि आज के आदिवासी जागें, अपने अधिकार के लिए संघर्ष करें वैसे ही जैसे बिरसा मुंडा और उसके साथियों ने किया था।

उपन्यास जब किसी मिशन या लक्ष्य को आधार बनाकर लिखा जाता है तो उसमें आग धधकती है इसकी तपन पाठकों को सुसुप्तावस्था से तो जगाती ही है, अन्याय के विरुद्ध लड़ने का जज्बा भी पैदा करती है।

इस उपन्यास में बीरसा मुंडा के नेतृत्व में आदिवासियों के भारतीय जमींदारों और अंग्रेजों के विरुद्ध जनविद्रोह को पुनर्घटित करने का प्रयास किया गया है। यह कोई काल्पनिक घटना नहीं है बल्कि ऐतिहासिक घटना को ही पुनःसृजित करने का प्रयास किया गया है।

यहाँ लेखक प्रतिश्रुत है, जिसमें लेखक का समाज के प्रति, देश के प्रति, जनता के प्रति एक दायित्व, एक कर्तव्य झलकता है जिसे महाश्वेता देवी ने बखूबी निभाया है।

बीरसा मुंडा केन्द्रित यह उपन्यास किसी व्यक्ति की जीवनी नहीं है, बीरसा की भी नहीं। यह जनसंघर्ष की अभूतपूर्व गाथा है। इसमें बीरसा नामक एक व्यक्तित्व तो है जिसके इर्द-गिर्द सारी कथा घूमती है, पर वह व्यक्ति मात्र नहीं है, वह तो हर बीरसाई और कबीलों में व्याप्त है। वह तो घट-घट में विराजमान है, वह तो भगवान है। बीरसा के भगवान बनने की कथा बड़ी रोचक है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

उपन्यास का आरंभ एक ऐतिहासिक तथ्य से होता है : "9 जून, साल 1900। राँची की जेल। नौ जून को बीरसा सवेरे नौ बजे मर गया।" वास्तविक घटना से उपन्यास का आरंभ इतिहास और कथा को एक दूसरे के इतने समीप खड़ा कर देता है कि दोनों एक दूसरे के रूप, गंध और स्पर्श को महसूस कर सकते हैं। यह इतिहास भी है, कथा भी, कोई इसे जीवनी भी कह सकता है। घटना का कलेवर ऐतिहासिक है, इसका सृजन औपन्यासिक। इस उपन्यास की भूमिका में महाश्वेता देवी ने यह सकारा भी है :

भारतवर्ष के स्वाधीनता-संग्राम के इतिहास में बीरसा मुंडा का नाम और विद्रोह अनेक दृष्टियों से स्मरणीय और सार्थक है। इस देश की सामाजिक और आर्थिक पृष्ठभूमि में उसका जन्म और अभ्युत्थान केवल एक विदेशी सरकार और उसके शोषण के विरुद्ध नहीं था। यह विद्रोह साथ ही साथ समकालीन सामन्ती व्यवस्था के विरुद्ध भी था। इतिहास की इन सब विवेचनाओं से काटकर बीरसा मुंडा और उसके अभ्युत्थान की सही-सही विवेचना असंभव है।

लेखक के रूप में, समकालीन मनुष्य के रूप में एक वस्तुवादी ऐतिहासिक का समस्त दायित्व वहन करने में हम सदा ही प्रतिश्रुत हैं। दायित्व स्वीकार करने का अपराध समाज कभी क्षमा नहीं करेगा! मेरा बीरसा-केन्द्रित उपन्यास उसी प्रतिश्रुति का ही परिणाम है।

फिर भी उपन्यास की विधा सदा ही अपनी आंगिक रीति मानकर चलती है। इस उपन्यास का भी इसीलिए बीरसा की मृत्यु से अन्त होता है। किंतु जीवन-विद्रोह- जो भी प्रचलित और प्रवाहित है - उसकी सच्चाई किसी काल में किसी भी देश में नेता की मृत्यु से समाप्त नहीं हो जाती। कालान्तर में उत्तराधिकार के पथ पर वह बढ़ता रहता है। विद्रोह से जन्म लेती है क्रांति। इस उपन्यास के अंत के बाद भी उपसंहार के संयोजन से यही अभीष्ट है।

इस उपन्यास को लिखने में सुरेशसिंह रचित 'Dust Strom and Hanging' पुस्तक के प्रति मैं विशेष रूप से ऋणी हूँ। इस सुलिखित तथ्यपूर्ण ग्रंथ के बिना 'जंगल के दावेदार' का लेखन संभव न होता।[9]

उपन्यासकार बीरसा मुंडा पर सुरेशसिंह की लिखी पुस्तक 'Dust Strom and Hanging' से इतनी प्रभावित हैं कि उन्होंने यह पुस्तक भी कुमार सुरेशसिंह को ही समर्पित की है। यह सृजन और सच का रिश्ता है। उपन्यासकार सृजन करता है; कहीं न कहीं इतिहासकार भी तो सृजन ही करता है। दोनों घोसला बनाते हैं; तिनका-तिनका जुटाते हैं, उसे सजाते-सँवारते हैं, इसके पहले उस ठिकाने की खोज करते हैं जहाँ इसे सजाना सँवारना है, फिर उस ठिकाने पर जुटाए तिनकों से घोसला बनता है। कुछ कथाकार इतिहासकार के बनाए घोसले को ही अपना घोसला बना लेते हैं और 'ऐतिहासिक उपन्यासकार' बन जाते हैं, बिलकुल कौए और कोयल की तरह। पर इतिहासकार और उपन्यासकार के सृजन और निर्माण में मौलिक फर्क होता है। इतिहासकार अनुसंधान आधारित पुष्ट प्रमाणित तथ्यों के आधार पर एक युग विशेष की व्याख्या करता है और उस युग की एक तस्वीर बनाता है। उपन्यासकार भी उस युग की तस्वीर बनाता है, पर वह बोलती और चलती तस्वीरें बनाता है जिसमें दिलों की

9 वही, भूमिका

धड़कन सुनाई पड़ती है। इतिहास और उपन्यास की तुलना क्रमशः 'स्टिल फोटोग्राफी' और सिनेमा के जीवंत दृश्यों से की जा सकती है। फोटो एक रेखीय, क्षैतिक, ऊर्ध्व, दूर से खींचा, नजदीक से खींचा- कैसा भी हो सकता है। फोटो खींचने का कोण अलग-अलग हो सकता है, जिससे कम सुंदर व्यक्ति भी सुंदर लगने लगता है, ब्लैक ऍंड व्हाइट और रंगीन चित्र का भी चक्कर हो सकता है। फिर कैमरे की गुणवत्ता, फोटो के कागज से भी फोटो की गुणवत्ता तय होगी। पर होगा वह फोटो ही। इसे हम देखते हैं, जानते हैं, परखते हैं - कभी नजदीक से, कभी दूर से। पर होता है वह अतीत ही, भूतकाल।

उपन्यास चलचित्र होता है जिसमें इतिहास के पात्र हमारी तरह घूमते-फिरते नजर आते हैं। उसमें जीते जागते व्यक्ति की संवेदनाएँ और भावनाएँ होती हैं। वह अतीत को वर्तमान में घसीट लाते हैं। उपन्यास का आरंभिक अंश एक बार फिर ध्यान से पढ़ें; उपन्यासकार 9 जून, साल 1900 को हमारे सामने खड़ा कर देता है। वह हमें पीछे नहीं ले जाता बल्कि 1900 को ही 2004 में लाकर खड़ा कर देता है। यही इतिहास और उपन्यास का अंतर है। इतिहास वर्तमान को अतीत में ले जाता है, उपन्यास अतीत को वर्तमान में ले आता है।

उपन्यास टेलीविजन की ही तरह 'क्लोज अप' का माध्यम है। इसमें पात्र का चलचित्र बहुत दूर से नहीं दिखाया जाता बल्कि वह चरित्र के करीब रहता है और उसी के साथ-साथ चलता है। इसीलिए इतिहास आधारित होते हुए भी उपन्यास इतिहास नहीं, वर्तमान में वर्तमान की कथा कहता है।

बीरसा मुंडा की संघर्षगाथा उपन्यासकार की प्रतिश्रुति दर्शाता है। वे आदिवासी समाज का सच हमारे सामने रखना चाहती हैं कि किस प्रकार गैर आदिवासियों (दीकू लोगों) ने इनके घर नष्ट किए, इन वनवासियों को बेघर किया और यदि उन्होंने इसका विरोध किया और इसके विरुद्ध आवाज उठाई तो 'दीकू' लोगों ने अंग्रेज साम्राज्यवादी ताकत से मिलकर इस कौम को नेस्तनाबूद कर दिया। होरी का सपना है 'गाय' (गोदान), चेम्बन का सपना है 'नाँव' (चेम्मीन), बीरसा का सपना है 'भात'। ये छोटे-छोटे सपने उनके लिए काल बन जाते हैं। भात मुंडा लोगों के जीवन में स्वप्न ही बना रहता है। घाटो (मोटा अनाज) एक मात्र

खाद्य है जो मुंडा लोगों को खाने के लिए मिलता है। इसी भात के चक्कर में बीरसा गिरफ्तार हो जाता है। उसके घर में धुँआ उठता है। बीरसा के सिर पर इनाम है। इनाम की चाहत में भगवान का ही कोई भक्त मुखबिर बन जाता है। सोते में ही भगवान के हाथ में हथकड़ी डाल दी जाती है।

उपन्यासकार ने बीरसा मुंडा को हमारे सामने जिंदा खड़ा कर दिया है। ऐसा विश्वसनीय चित्रण मानो कोई आँखों देखी सुना रहा हो -

बीरसा के हाथों में हथकड़ियाँ थीं, दोनों ओर दो सिपाही थे। बीरसा के सिर पर पगड़ी थी; धोती पहने था। बदन पर और कुछ नहीं था- इसी से हवा और धूप एक साथ चमड़ी को छेद रहे थे। राह के दोनों ओर लोग खड़े थे। सभी मुंडा थे। औरते छाती पीट रही थीं; आकाश की ओर हाथ उठा रही थीं। आदमी कह रहे थेः "जिन्होंने तुम्हें पकड़वाया है, वे माघ महीना भी पूरा होते न देख पाएँगे। वे अगर जाल फैलाये रहते हैं तो उस जाल में पकड़े शिकार को उन्हें घर नहीं ले जाने दिया जायेगा।"[10]

रोमांच, रहस्य, उत्सुकता और उत्कंठा - ये किसी भी कथा की विशेषताएँ होती हैं। उपन्यासकार कथा के इन गुणों का भरपूर इस्तेमाल करती हैं। वे सबसे पहले यही बताती हैं कि 9 जून 1900 को बीरसा राँची के जेल में है। इसके बाद कहानी धीरे-धीरे 'रिवर्स' होती है। पाठक में सहज उत्सुकता जगती है कि यह कैसे हुआ जानें।

बीरसा मुंडा ने 'उलगुलान' नामक आंदोलन चलाया था-

"उलगुलान की आग में जंगल नहीं जलता; आदमी का रक्त और हृदय जलता है। उस आग में जंगल नहीं जलता! मुंडा लोगों के लिए जंगल नए सिरे से माँ की तरह बन जाता है - बीरसा की माँ की तरह; जंगल की संतानों को गोदी में लेकर बैठता है।

इसीलिए तो बीरसा ने जंगल का अधिकार चाहा था!

---

10 वही, पृ. 9-10

वह जंगलों को दिकू लोगों के अधिकार से छीन लेगा। जंगल मुंडा लोगों की माँ है और दिकू लोगों ने मुंडा लोगों की जननी को अपवित्र कर रखा है। बीरसा ने उलगुलान की आग जलाकर माँ-जंगल को शुद्ध करना चाहा था। उसके बाद मुंडा और हो, कोल और संथाल, उराँव लोगों ने जंगल के स्वामित्व का दावा, छोटा नागपुर के अरण्य का अधिकार, पलामू, सिंहभूम, चक्रधरपुर - सारे जंगलों का अधिकार चाहा था जिससे वे माँ की गोद में फिर से पसर सकें।[11]

इतिहासकार भी ये सब बातें बता सकता है, पर उपन्यासकार उससे एक कदम आगे बढ़कर पाठक को बीरसा से एकाकार कर देता है।

बीरसा समझ गया कि अब वह चला जायेगा, क्योंकि आज ही सवेरे उसने खून की बड़ी भयानक कै की थी। अचेत होते-होते भी अपने खून का रंग देखकर बीरसा मुग्ध हो गया था। खून का रंग इतना लाल होता है! सबके खून का रंग लाल होता है; बात उसे बहुत महत्व की और जरूरी लगी। मानो यह बात किसी को बताने की जरूरत थी! किसे बताने की जरूरत थी? किसे पता नहीं है? अमूल्य को पता है, बीरसा को मालूम है, मुंडा लोग जानते हैं। साहब लोग नहीं जानते। जेकब जानता है। लेकिन जेल का सुपरिंटेंडेंट, डिप्टी-कमिश्नर - ये लोग नहीं जानते। नहीं जानते - इसलिए न वे लोग फौज की टुकड़ी, और बंदूक, और तोप लेकर लंगोटी लगाये तीर-बरछा-बलोया और पत्थर का सहारा लेने वाले मुंडा लोगों को मारने आये थे। बीरसा अगर बोल सकता तो कह जाता; साहब लोगों! खून के रंग में कोई अंतर नहीं होता। मारने पर जितनी तुमको चोट लगती है, मुंडा लोगों को भी उतनी ही लगती है। मुंडा लोगों के जीवन पर तुम लोगों ने जबरदस्ती अधिकार जमा लिया है। उस अधिकार को छोड़ने में तुमको जैसा लगता है, जंगल की आबाद जमीन को दिकू लोगों के हाथों में देते मुंडा लोगों को भी वैसा ही लगता है।

किंतु बीरसा कुछ न कह पाया। वह आँखे नहीं खोल पाता है - किसी ने अंदर जैसे महुआ के तेल की मशाल और ढिबरी बुझा दी हो। जैसे कोई बीरसा को हिला रहा है। कह रहा है: सो जाओ, सो जाओ, सो रे।[12]

---

11 वही, पृ. 10-11

12 वही, पृ. 11

ऐसा भावुक प्रसंग कथाकार की लेखनी से ही निकल सकता है। बीरसा और उसके आंदोलन को इतिहास इतने करीब से नहीं बता सकता। इसमें बीरसा का दर्द है। यह उसका व्यक्तिगत दर्द नहीं है; पूरी मुंडा जाति का दुःख वह अपने भीतर समेटे हुए हैं और इसी से उठती उलगुलान की आग जो सब कुछ जलाकर राख करने को प्रतिबद्ध थी।

अंग्रेज, अमेरिकी और पूरा पश्चिमी संसार अपने को सभ्य और पूरब की दुनिया को असभ्य, बर्बर और पिछड़ा मानता है। पर जिस घिनौने तरीके से वे बीरसा मुंडा की हत्या करते हैं, वह आज के इराक युद्ध के कैदियों पर की जा रही बर्बरता की याद दिलाते हैं। बीरसा अपनी भूमि के लिए, अपने हक के लिए संघर्ष कर रहा है। इराक अपने वतन को अमेरिकी खूनी पंजे से मुक्त कराने के लिए प्रयासरत है। बीरसा का आंदोलन मुक्ति का आंदोलन है। उसकी भूमि पर दीकूओं यानी गैर-आदिवासियों का कब्जा है; वह अपनी जमीन और अपना हक वापस चाहता है। दीकू जंगल से लकड़ियाँ काटते हैं, जंगल नष्ट करते हैं, जंगल साफ कर उन्हें खेत में तब्दील कर देते हैं और उसी खेत में आदिवासियों को बंधुआ और बेगार मजदूर के रूप में जोत देते हैं। अपनी ही जमीन पर गुलाम हैं - ये आदिवासी। अपने भाइयों को गुलामी से आजादी दिलाने के लिए बीरसा ने उलगुलान की अलख जगाई थी। मुक्ति संग्राम के इसी महानायक की अंग्रेजों ने हत्या कर दी। इसका स्पष्ट उल्लेख उपन्यासकार ने किया है। उसके खाने में विषैला पदार्थ मिला दिया गया और वह उल्टियाँ करता-करता मर गया। इसका बड़ा ही मर्मस्पर्शी अंकन महाश्वेता देवी ने किया है:

सवेरे नौ बजे बीरसा मर गया। जेल के सुपरिंटेंडेंट हाथ में घड़ी लिए खड़े थे। बीच-बीच में उसकी नब्ज देख रहे थे। वह क्षीण, बहुत क्षीण थी। बीरसा की आँखें बंद थीं- कपाल कुछ सिकुड़ा हुआ। ऐंडरसन कुतूहलवश झुके।

अब झुका जा सकता है। जिन गोरे हाथों, गोरी चमड़ी से वह घृणा करता था, वही हाथ उसके चिपचिपाते कपाल, गाल को छूते हैं। उसका चेहरा छूकर ऐंडरसन को आश्चर्य की अनुभूति हुई। यही बीरसा है, जिसके लिए दो जिलों की पुलिस और सेना भाग-दौड़ कर रही थी? सुकुमार सुन्दर चेहरा! कौन

कहेगा कि मुंडा का लड़का है? इस समय उसके मुँह पर मौत की छाया है। ऐंडरसन ने उसकी नाड़ी को टटोला। नौ बजे के लगभग नाड़ी क्षीण होते-होते रुक गयी। सहसा शरीर लुढ़क गया। कपाल की रेखाएँ मिट गयीं। मुख शांत और स्थिर हो गया। मृत्यु के सिवा और कोई भी शक्ति या घटना बीरसा मुंडा के शरीर में ऐसी अनन्य शांति नहीं ला सकती थी![13]

इधर बीरसा मर रहा है उधर जहर देने वाला ऐडरसन घबरा रहा है कि वह जल्दी मर क्यों नहीं रहा है। उसे जल्द से जल्द यह खुशखबरी लेफ्टिनेंट गवर्नर तक पहुँचानी है। जेल सुपरिटेंडेंट को इस व्यक्ति की शक्ति पर अपार आश्चर्य होता है :

इस आदमी का शरीर आश्चर्यजनक रूप से शक्तिशाली था। मई महीने की तीस तारीख से भाग रहा है, तो भागता ही जा रहा है। फरवरी से अकेला एक कोठरी में बंद है। फरवरी के पहले बहुत दिन तक पहाड़ों, जंगलों में भागा-भागा फिरता था। खाने-पीने को कभी क्या मिला - यह वही जाने! शरीर टूटता नहीं, मरता नहीं। अब उसे मर जाना चाहिए। नहीं तो प्रमाणित हो जाएगा कि बीरसा सचमुच भगवान है। भगवान न होता तो इतने दिनों में वह मर ही जाता![14]

जेल सुपरिटेंडेंट की इस व्याकुलता और चिंता का विस्तारित अंकन अंग्रेज, अंग्रेज नौकरशाह और पूरे साम्राज्यवाद के चारित्रिक अधोपतन और नंगेपन को उभारता है। इसीलिए यह उपन्यास एक साम्राज्यवाद विरोधी कृति बन गया है। ऐंडरसन झूठी रिपोर्ट बनाता है और यह रिपोर्ट लिखते वक्त कठोर हृदय ऐंडरसन भी अंदर से हिल जाता है:

सुपरिटेंडेंट ने लिखाः 'खूनी पेचिश के बाद हैजा हो जाने से बड़ी आँत का ऊपरी हिस्सा सिकुड़कर जुड़ गया। परिणामस्वरूप ह्रत्पिंड की बायीं ओर खून बहा है और धीरे-धीरे निस्तेज होकर बीरसा मर गया। उसके बाद सोचकर देखा, बीरसा ने कभी जेल के बाहर एक बूँद पानी भी नहीं पिया। हैजे की बात लिखी, इससे

13 वही पृ. 12
14 वही

मन कचोटने लगा। अंत में लिखाः 'कैदी को किस तरह हैजा हो गया, यह पता नहीं लगा।'[15]

बीरसा मर चुका है। पर ऐंडरसन अभी भी परेशान है। बीरसा यह लड़ाई खत्म नहीं कर रहा है। ऐंडरसन को नहीं मालूम कि बीरसा मात्र किसी शरीर में बंधा प्राण नहीं है, बल्कि जन-जन में बसी वह क्रांति है, विचारधारा है, जिसे कोई नहीं मार सकता। बीरसा भगवान है, वह सबके मन में व्याप्त है; उसे मारकर भी ऐंडरसन उसका कुछ नहीं बिगाड़ पाता।

ऐंडरसन का शरीर और मन जैसे पराजय की ग्लानि से अवसन्न हो गया। जो बन्दूक लेकर बीरसा के साथ खड़े थे, उनकी लड़ाई खत्म हो गयी। जो बीरसा को बाँधकर ले आये थे, उनकी लड़ाई समाप्त हो गयी। उनके साथ बीरसा क्यों नहीं लड़ाई कर रहा है? उन्होंने क्या किया है? उसे सूनी कोठरी में रखा था? उसके हाथ, पैर और कमर को जंजीरे बाँधकर रखा था- और क्या किया था? यह लड़ाई किसलिए है? क्यों मुंडा लोगों ने बीरसा को बीरसा बताकर शिनाख़्त नहीं की? क्यों उनकी नौकरी में लाश-घर का यह नगण्य डोम बीरसा को 'भगवान' कहे जा रहा है?[16]

बीरसा को चुपचाप अंधेरे में जला दिया गया। क्या बीरसा मर गया? बीरसा आज भी जिंदा है, हर उस आदिवासी में या फिर उस व्यक्ति में जो अन्याय के विरुद्ध खड़ा है। इसीलिए बीरसा भगवान है। इस बीरसा को उसके कैदी साथी गीत गाकर विदा करते हैं। वे बीरसा की शिनाख़्त नहीं करते। उनका भगवान मर नहीं सकता।

रात को मुंडा कैदियों ने खाना नहीं खाया। हर कोठरी में ठुंसे हुए, भयंकर गरमी में उबलते हुए भी वे गा रहे थे। उस गाने का सुर रोने की तरह का था और गाने की भाषा थी दुर्बोध-जंगल की छाती पर जोरों से बहती आँधी की भाषा की भाँति आदिम। वह गीत किसी मंत्र की तरह गंभीर था।'[17]

---

15 वही, पृ. 14
16 वही, पृ. 15
17 वही, पृ. 20

'भगवान कभी मर नहीं सकता' बीरसा ने उन्हें यह विश्वास दिलाया था। बीरसा के प्राणांत और दाह-संस्कार के बाद भी उन्हें विश्वास है कि भगवान जरूर लौटेगा, चाहे कोई रूप धरकर लौटे। बीरसा अपने साथियों को, अपनी बिरादरी को, अपने लोगों की रग-रग पहचानता है। वह जानता है कि इन भोले-भाले, अज्ञानी और अंधविश्वास में डूबे भलेमानुषों को भगवान बनकर ही जहालत से निकाला जा सकता है, उन्हें उनके अधिकार वापस दिलवाए जा सकते हैं। उसे यह भी मालूम है कि सत्ता उसे ऐसा करने से रोकेगी, उसका दमन करेगी। सरकार से लड़ते-लड़ते उसकी जान भी जा सकती है। इसीलिए वह अपने लोगों के मन में यह बात जड़ देता है कि वह भगवान है और भगवान कभी मर नहीं सकता। उसके शरीर का अंत हो सकता है पर वह दूसरा शरीर लेकर फिर जन्म लेगा। आपस में इन आदिवासियों की बात ध्यान से सुनने की है:

'तुम्हें क्या पता, भगवान ने मुझसे कहा था न, अगर बिजली बनकर लौट आऊँ, तो तुम लोग डरोगे। अगर बिजली बनकर गिर जाऊँ, तो तुम लोग डरोगे। अगर बाघ बनकर लौट आऊँ तो तुम लोग डरोगे। अगर जानवर बनकर लौट आऊँ तो तुम लोग मुझे पहचानोगे नहीं। इसीलिए, मैं मानुस होकर ही लौट आऊँगा; नयी धरती गढ़ूँगा। बाभन बनकर आने पर, गोसाईं बनकर आने पर तुम लोग मुझे पहचानोगे नहीं। मैं मुंडा बनकर आऊँगा रे। जो मुंडा फिर उलगुलान की बात कहेगा, उसे मैं पहचान लूँगा।'

× × ×

"और बहुत कुछ कह गया। मैं लौट आऊँगा रे भरमी। बुन्दू, तमार, तमाम जगहों में होली की आग जलाऊँगा। सोनपुर में धूल की आँधी उड़ाऊँगा। पता लगेगा- बानो के पहाड़ पर रेशम के कीड़ों ने अंडे दिए हैं। उन अंडों से जैसे बहुत-से कीड़े निकलते हैं, मेरी बातों से नयी बातें निकलेंगी।"[18]

"उलगुलान का अंत नहीं है। भगवान का मरण नहीं होता।" यही इस उपन्यास का संदेश भी है और प्राणतत्व भी। "सिंहभूम का सारा जंगल और धरती हमें

18 वही, पृ. 25-26

वापस मिलेगी" - यही प्रेरणा देकर अपना चोला बदला है भगवान ने। हिंदू धर्म की ईश्वर संबंधी अवधारणा और अवतारवाद का यह जनवादी इस्तेमाल अपने आप में अनूठा है। भक्ति और अवतारवाद का इस्तेमाल सत्ता वर्ग और ब्राह्मण वर्ग अपने हित में करता आया है। पर बीरसा ने अपनी कौम को बचाने, लोगों को लगातार संघर्षरत रहने और उन्हें संगठित करने के लिए इस धार्मिक आवरण का सहारा लिया था। यह धर्म का सार्थक उपयोग था। अंग्रेज इसी बात से घबराए रहते थे कि आदिवासी जिस व्यक्ति को अपना भगवान मानते हैं उसे पकड़ा कैसे जाए। वह तो हवा में, पानी में, जंगल में, पेड़ पर सब जगह व्याप्त है। वे बार-बार आदिवासियों के मन से भगवान की धारणा निकालने का प्रयास कर चुके थे। पर कोई आदिवासी यह मानने को तैयार ही नहीं था कि वह भगवान नहीं है।

बीरसा का चरित्र अविश्वसनीय या चमत्कारिक नहीं है। वह आम आदमी की तरह सोचता और काम करता है। बचपन से ही उसमें पढ़ने, कुछ सीखने और कुछ करने का जज्बा था। वह अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति और अदम्य साहस के बल पर पढ़ाई करता और अंग्रेजी सीखता है। उसकी पढ़ाई ईसाई मिशनरी में होती है पर वह ईसाई नहीं बनता। वह गिरजाघरों को भी साम्राज्यवादी शोषण का एक हिस्सा मानता है। वह उन्हें 'दीकू' से अलग नहीं मानता। वह जानता है कि वे आदिवासियों को थोड़ा भोजन, थोड़ा कपड़ा और थोड़ी बहुत शिक्षा देकर अपना धर्म ओढ़ा देते हैं। धर्म प्रचार करना ही उनका मुख्य ध्येय है। उसके भगवान बनने पर ईसाई मिशनरियों को बड़ा झटका लगता है क्योंकि अब उनकी रोजी-रोटी ठप्प होती नजर आती है। अपने भगवान को छोड़कर अब कोई गिरजाघर में ईसाई धर्म ग्रहण करने नहीं जाता। वे अपने भगवान की शरण में रहते हैं, घाटो खाते हैं और उलगुलान की तैयारी में लगे हैं।

इस उपन्यास में बीरसा की संगठनशक्ति, प्रबंध क्षमता और नेतृत्व करने की कथा विस्तार से सुनाई गई है। बीरसा आदिवासियों को इकट्ठा करने के लिए स्थानीय रीति-रिवाजों, पर्व-त्योहारों और उनकी मनःस्थिति का सार्थक उपयोग करता है। वह अपने को भगवान घोषित कर सबसे ऊपर हो जाता है। अब उसके नेतृत्व को कोई चुनौती नहीं दे सकता। एक ओझा चुनौती देता है पर उसे मुँह

की खानी पड़ती है। बीरसा पढ़ा लिखा बुद्धिमान व्यक्ति है। वह अंधविश्वासी नहीं है। वह जानता है कि अपने को भगवान बताया है तो कुछ न कुछ चमत्कार तो दिखाना होगा। उसका चमत्कार ओझा के जादू-टोना से अलग है। वह हैजा के प्रकोप को आनन-फानन में काबू में कर लेता है। भगवान सबको बचा लेते हैं। भगवान लोगों से कहते हैं कि पानी उबाल करके पीयो, बीमार व्यक्ति को अलग रखो, उसकी उल्टी और दस्त को जमीन में गाड़ दो, खाना गर्म खाओ आदि। भगवान ने सबको स्वच्छ रहना सिखाया, परहेज करना सिखाया। भगवान का चमत्कार देखकर सारे वनवासी हतप्रभ और चकित हैं। ऐसा तो पहले कभी हुआ ही नहीं; हैजा तो बस्ती साफ करके ही दम लेता था; अबकी बार भगवान ने उसे ऐसा नहीं करने दिया। अद्‌भुत चमत्कार। प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री माइल्स हॉर्टन और पाओलो फ्रेरे की बातचीत पर आधारित पुस्तक "चलकर राह बनाते हम" में वंचितों और वयस्कों को शिक्षा प्रदान करने के बारे में एक अहम बात उभरती है कि जिसे आंदोलित करना है, शिक्षित करना है, उसे उसके अनुसार शिक्षित करो। यह समाज आरोपण से घबराता भी है, छिटकता भी है और विद्रोह भी करता है। शिक्षक को जहाँ उसने 'दीकू' समझा, वहीं उनके लिए कुछ करने की परिकल्पना गड़बड़ाई। छोटे बच्चे की मानसिकता से इनकी मानसिकता मेल खाती है। जिस प्रकार एक छोटा बच्चा अनजाने व्यक्ति की गोद में तब तक नहीं जाता जब तक उसे विश्वास नहीं हो जाता कि वह उसका हितैषी है, दुश्मन नहीं। 'दीकू' लोगों ने आदिवासियों पर इतने जुल्म ढाए हैं कि वे किसी भी बाहरी आदमी को शक की निगाहों से देखते हैं। आजादी के बाद आदिवासियों के लिए चलाई गई योजनाओं की सबसे बड़ी खामी यह रही कि उनसे यह पूछा नहीं गया कि वे क्या चाहते हैं? सबसे पहले उनका विश्वास अर्जित करना जरूरी है। राम भी वनवासियों का हृदय जीतकर ही उनसे मदद ले सके थे। बीरसा भी यही रास्ता अपनाकर उनका भगवान बन जाता है और उनकी 'मुक्ति' के लिए संघर्ष करता है।

वनवासियों की यह लड़ाई आजादी की लड़ाई है। बीरसा जेल में अंतिम साँसे गिन रहा है। धानी गा उठता है:

बोलोपे बेलोपे हेगा मिसि होन् को
होइओ डुडुगार हिजू ताना
बोलोपे, बेलोपे....।

ओते रे डुडुगार सिरया रे को आन्सि
दिसूम ताबु बुआल ताना
बोलोपे, बेलोपे....।

ताइओम् ते दो ठोरा कापे नामिया
दिसूम ताबु नुवा जाना!
बोलोपे, बेलोपे.....।

(ओ भाई, ओ बहनो, ओ बच्चो, भागो, जान बचाओ। आँधी उठी है। ओ भाई, ओ बहनो...। आँधी धूल की छाती में, आकाश को ढके कुहासे में देखो, अपना देश वह छीन ले गये। ओ भाई, ओ बहनो...। बाद में फिर राह नहीं मिलेगा रे। सब अँधेरा-अँधेरा हो रहा है। ओ भाई, ओ बहनो...।)[19]

बोलोपे, बेलोपे... गीत में एक दर्द है, पीड़ा है जो मुंडा लोगों के "गले से, रक्त से, छाती के भीतर से, मंत्र की तरह, यंत्रणा की तरह" निकल रहा है।

मुंडाओं ने जिस धरती पर अपना घर बसाया था उसी पर आघात होने लगा। उनकी भूमि छीनी जाने लगी। मुंडाओं ने विरोध किया तो उन्हें 'विचाराधीन कैदी' बनाकर एक-एक कर जेल में ही मारा जाने लगा। आदिवासियों की जमीन पर दीकू लोग कब्जा जमाने लगे। वनवासियों की ग्राम-व्यवस्था ध्वस्त होने लगी। अब अपने ही खेतों में मुंडा बेगार खटने लगे। औपनिवेशिक शासन और साम्राज्यवादी शोषण चक्र में मुंडा पिसने लगे।

"उस जीवन में घुस आये थे महाजन, जमींदार, मिशनरी, जेल-कचहरी, पक्की सड़कें, रेलगाड़ी, बेनट, बंदूक, गरमी की तपन, सूखा, दुर्भिक्ष, मजदूर भरती करने वाले, बेगारी ...।"

---

19 वही, पृ. 29

जवानी में धानी गाता :
बेठबेगारी दिते मोर माँधे झरे लौ गो।
जमिंदारेर पेयादा ओइ राते दिने।
ताड़ाय मोरे, काँदि आमि राते दिने।

बेठबेगारी दिये मोर एइ हाल गो-
घर नाइ, सुख मोरे के दिवे गो।
काँदि आमि राते दिने।
चोखेर ललेर मतइ लूनपारा मोर लौ गो।

(बेगार करते-करते मेरे कंधों से खून बहने लगा है। जमींदार का सिपाही मुझे रात-दिन डाँटता रहता है। मैं दिन-रात रोता रहता हूँ। बेगार करते-करते मेरा यह हाल हो गया है। घर नहीं है, तो मुझे सुख कौन देगा? मैं दिन-रात रोता रहता हूँ। आँसुओं की तरह ही मेरा खून नोनखरा (नमकीन) हो गया है)[20]

उन्हें बंधुआ मजदूर बनाने में अंग्रेजी राज और औपनिवेशिक शासन का भरपूर सहयोग था क्योंकि उन्हें तो दोहन, शोषण के जरिए धन बटोर कर अपने वतन भेजने से मतलब था।

इस उपन्यास में बीरसा के भगवान बनने और उलगुलान क्रांति का अगुवा बनने की कथा विस्तार से कही गई है। बीरसा बचपन से ही होनहार और सबसे अलग है। वह अपनी माँ को भी अनचीन्हा लगता है।

मुंडा माताएँ करमी से कहतीं: "ओ री करमी, वह अढ़तिया दिकू नन्द, जो ठाकुर पूजता है, उसी किश्न की तरह तेरा बेटा बंसी बजाता है रे! लड़का बंसी बजाता है सब मुंडा लोगों के घर में। उसी बंसी को सुनकर भागते खरगोश, भयानक सुअर, बन के हिरन- सब शान्त होकर दो दंड रुक जाते हैं। ऐसा कभी नहीं देखा है?"[21]

---

20 वही, पृ. 32
21 वही, पृ. 43

गौरतलब है कि बीरसा कृष्ण की ही तरह गाय चराता है और उसकी बंसी पर पशु-पक्षी मोहित होकर उसके पास बैठ जाते हैं। उसकी इस अलौकिकता से सब हतप्रभ और आश्चर्यचकित हैं। बीरसा अतिसंवेदनशील है। वनप्रांत उसे पुकारता प्रतीत होता है। उसे लगता है कि उसका जन्म कुछ करने के लिए हुआ है। उसकी इस मनोदशा का वर्णन उपन्यासकार ने बड़ी सूक्ष्मता से किया है। एक दिन वह जंगल में विचर रहा है कि :

"उसने देखा था कि एक बड़ा-सा साँभर हिरन उस कीचड़ में फँसकर खड़ा था। पैरों का बहुत-सा हिस्सा कीचड़ में धँस चुका था। लगता था कि कीचड़ में से पैर निकालने का उसने प्रयत्न किया था और उसी हिलने-डुलने में पैर धीरे-धीरे और भी गहरे-से-गहरे में फँसते गये।

उसके बाद हिरन ने समझ लिया कि वह सामने के जल के पास नहीं पहुँच सकेगा, कीचड़ से पैर भी न निकाल सकेगा। सामने पानी रहते भी वह प्यास से मर जाएगा। चारों ओर बनभूमि रहते हुए भी वह मुक्त जीवन न पा सकेगा। उसके सामने भयंकर और निर्मम मृत्यु आ खड़ी हुई थी। भीषण और दारुण मृत्यु सामने होने की बात सोचने के परिणामस्वरूप उसके खड़े रहने के ढंग में संपूर्ण रूप से पराजित हो, आत्म-समर्पण करने का भाव था।

बीरसा क्या इस समय वहीं साँभर है? चारों ओर मुक्त और वृहत्तर जीवन है; फिर भी वह यहाँ क्यों फँसा हुआ है? सोचने से भी डर लगता है!

साँभर का सड़ा-गला शव - वर्षा न आने तक वहीं खड़ा रहा।"[22]

इस घटना ने बीरसा को अंदर से हिलाकर रख दिया। वह समझ नहीं पा रहा है कि उसके भीतर छटपटाहट क्यों है? उसकी यही छटपटाहट उसे क्रांति का अगुवा बनाती है। उसे सहसा महसूस होता है कि :

"आदमी पशु नहीं है - इसीलिए भयंकर मजबूरी और विवशता से भी सहसा मुक्ति पा सकता है!

---

22 वही, पृ. 57

बीरसा वह मुक्ति पा गया।"[23]

उस दिन छोटा नागपुर में भूचाल आ गया। आदिवासियों की बेदखली की मुनादी करा दी गई।

"अब ढोल पीटा है सब गाँवों में। सारी जमीन-जंगल वापस ले लिये हैं। जंगल में हमने लाखों-लाख चाँद से गाय-छागल चराये; जंगल से काठ लिया है। हाँ, बीरसा, वही जंगल तो ले लिया। अब से कोई जंगल में गाय-छागल नहीं चरा सकेगा। जंगल से काठ-पत्ता-शहद नहीं ला सकेगा। शिकार नहीं खेल सकेगा। जंगल के भीतर जितने गाँव थे, सब उजाड़ दिये।"

नहीं!

बीरसा चीख उठा था। उसके खून में चुटिया और नागु डोल उठे थे। जंगल का अधिकार कृष्ण-भारत का आदि-अधिकार है। जब सफेद आदमियों का देश समुद्र के अतल में खोया हुआ था, तब से ही कृष्ण-भारत के काले आदमी जंगलों को माँ के रूप में जानते-पहचानते हैं।[24]

बीरसा जब यह समझ जाता है कि अर्जी से जमीन वापस नहीं मिलेगी तो वह अपनी माँ से कहता है:

"बीसरा मत कहो, माँ! मैं भगवान हूँ। मैं ही भगवान हूँ। मैं मुंडाओं के लड़कों को झुलाऊँगा नहीं। गोद में खिलाऊँगा नहीं। मैं सबके लिए यह जंगल-पहाड़-धरती - सब जीतकर ला दूँगा। इन लोगों ने भगवान चाहा था माँ, मैं भगवान बनकर लौट आया हूँ।"

× × ×

मुंडा चिल्ला रहे थे: 'बीरसा भगवान हो गया। सब रोगियों-भोगियों को बचाएगा, मरों को जिलाएगा, भूखों को भात देगा।

---

23 वही

24 वही, पृ. 81

नगाड़े पर लगातार चोट पड़ रही थी।[25]

मुंडाओं की प्रार्थना सफल हो गई। उनका इन्तजार समाप्त हुआ। भगवान ने मनुष्य रूप में जन्म ले लिया है।

ने मुलुक दिसूमरे, धरतिआबाय हाइजि लेखाये भाद्रमासे,
मानोया होन्को रसिकतानारे भाद्रमासे।

प्रार्थना जानाय मानुष सार बों एसे
चले जाय दल बेंधे।

चल जाइ आनन्द कर, धरति आबा के प्रणाम करि
से आमादेर दुशमनदेर बन्दी करबे भाद्रमासे।

(इस देश में धरती के आबा ने भाद्र मास में जन्म लिया, मानव भाद्र मास में आनन्द करता है.....। मनुष्य पंक्ति बाँधकर प्रार्थना करते हैं और दल बाँधकर चले जाते हैं।... चलो चलें, आनन्द मनाएँ, धरती के आबा को प्रणाम करें। वह हमारे शत्रुओं को भाद्र मास में बंदी बनाएगा।)[26]

बीरसा की इस लोकप्रियता ने दीकू को सहमा दिया है। सरकारी अमले किसी विद्रोह की आशंका में सतर्क हो गए हैं। मिशन के प्रचारक उससे घबरा रहे हैं। सब डर रहे हैं कि बीरसा "एक बार हाँक लगाने से सभी मुंडा विद्रोह कर देंगे।"[27]

इधर इन षड्यंत्रों से बेखबर बीरसा ऐलान करता है:

मुंडा बड़े बंधनों में फँसे हुए हैं। दीकू लोगों ने मुंडाओं को उधार-कर्ज-कोयला खान-रेल-जेहल-अदालत वगैरह के हजारों चक्करों में फाँस लिया है। अब हमें सब तरह से आजाद होना पड़ेगा। सारे विदेशियों को भगाएँगे। किसी को कोई लगान नहीं देंगे। सारे जंगल ले लेंगे। जैसे पहले लिये थे, वैसे हीं अब लेंगे।[28]

25 वही, पृ. 90
26 वही, पृ. 91
27 वही, पृ. 103
28 वही, पृ. 104

सब डर गए हैं क्योंकि मुंडा खेती नहीं कर रहे हैं, उधार नहीं ले रहे हैं। जमींदार जगमोहन सिंह, महाजन सूरज सिंह, पटवारी बनराम सब भयाक्रांत हैं। मिशन के साहब लोग सहमें से हैं: "कोई क्रिस्तान बनना नहीं चाहता। मिशन छोड़कर सब चले जा रहे हैं।"[29]

सरकार विद्रोह की आशंका से अलग घबराई हुई है। पूरा तंत्र बीरसा को घेरने की तैयारी करने लगता है। सरकार की चिंता है यदि मुंडा लोग खेती नहीं करेंगे, उधार नहीं लेंगे तो फिर लगान कहाँ से वसूला जाएगा। सरकार की यह आर्थिक चिंता उस साम्राज्यवादी और औपनिवेशिक नीति की ओर इशारा करती है जिसके तहत वे भारत को उपनिवेश बनाकर इसका रक्त चूसने आए थे। बीरसा मुंडा उनकी इसी नीति का विरोध कर रहा था। उसका विद्रोह केवल मुंडा लोगों का स्थानीय विद्रोह न था बल्कि साम्राज्यवादी सरकार के शोषण के खिलाफ जंग का ऐलान था।

अंग्रेज डॉक्टर राजर्स अंग्रेजों की भलमनसाहत और न्यायप्रियता की पोल खोल देता है:

....बीरसा शायद इस तरह सोचता है कि मुंडाओं पर और ज्यादा क्या मुसीबत आ सकती है? उन्होंने जमीन-घरबार-गाय-बैल - सब एक-एक कर खो दिए हैं। उनकी जमीन पर दूसरे लोग आकर बैठ गये हैं - हम लोगों के ही बनाये कानून के सहारे![30]

कानून की दुहाई देने पर वह कहता है:

यह तो किताबी बात है। काम में वह नहीं आता, यह आप ही सबसे ज्यादा अच्छी तरह जानते हैं। मुंडा लोग बांग्ला, हिन्दी, अंग्रेजी नहीं जानते, नहीं समझते। न्यायाधीश किसी दिन मुंडारी सीखकर मुंडाओं की शिकायतें नहीं सुनते, न्याय नहीं करते। कोर्ट में मुकदमा होने पर आसामी क्या कहता है, न्यायाधीश नहीं समझते। दुभाषिया मनमानी झूठी बातें कहकर उन्हें समझा देता

29 वही, पृ. 105
30 वही, पृ. 110

है। नतीजा जो होता है वह आप जानते हैं। दूसरे के खेत से एक आने-भर की चीज उठा लेने के अपराध में मुंडाओं को एक बरस की जेल होती है, हमेशा होती है।[31]

बीरसा पर मुकदमा चला। कुछ साबित न होने पर चेतावनी देकर उसे रिहा कर दिया गया। जेल से लौटकर बीरसा चुपचाप बैठा नहीं रहा। वह समझ गया था कि केवल जमींदार और महाजन दोषी नहीं है, अधिक दोष उस सरकार का है जो अपने स्वार्थ के लिए उन्हें शरण देती है, उनकी ओर से लड़ाई करती है। वह मुंडा लोगों से लड़ाई का आह्वान करता है और मुंडा अंत तक उसका साथ देते हैं। वह भी लड़ता रहता है। धोखे से पकड़ लिए जाने पर भी उसका आत्मबल कम नहीं होता। अंग्रेज सरकार उसे ज्यादा दिन जिंदा रखकर खतरा नहीं उठाना चाहती थी। अतएव जेल में ही हत्या कर देती है और जेलर डायरी में लिख देता है "डाईड ऑफ एशियाटिक कॉलरा।"

इस पूरे षड्यंत्र का पर्दाफाश करने के लिए उपन्यासकार ने 'उपसंहार' शीर्षक से एक अध्याय जोड़ा है जिसमें अमूल्य बाबू नामक एक पात्र के अवलोकन बिंदु से बीरसा और उसके साथियों के साथ की गई मुकदमे और अदालत की नौटंकी का पर्दाफाश किया गया है। हर कृति अपने आप में एक 'मिशन' होती है। इस कृति का उद्देश्य है साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के 'मासूम' और 'भलमानुस' चेहरे का बेनकाब करना। वकील जेकब की जिरह का कोई जवाब मैजिस्ट्रेट के पास नहीं है। वह 'गलथेथरी' कर रहा है। बेचारे वनवासियों को तो यह तक मालूम नहीं कि उन्हें किस अपराध में बंदी बनाया गया है। वे न तो वकील की भाषा समझ पाते हैं और न ही मैजिस्ट्रेट की। दुभाषिया मैजिस्ट्रेट को जो कुछ बताता है उस पर भी उनका अख्तियार नहीं है। यहाँ एक बड़ा सवाल उभर कर आता है कि क्या मौलिक मानवीय अधिकारों की माँग करना भी अपराध है? और माँग भी क्या है:

---

31 वही, पृ. 111

नमक - घाटो के साथ, जंगल की जमीन में फसल उगाकर अपने खलिहान में उसकी उपज को ला रखना, बेगारी न देना, जंगल में अपना जीवन शांति के साथ बिताना!

> यह क्या आसमान से सूर्य को पा लेने की इच्छा के समान हुआ?
> उसी तरह की स्पर्द्धापूर्ण उद्धत यह इच्छा है क्या?
> शायद यही हो।

नहीं तो क्यों न्याय के नाम पर, सभ्यता के मुँह पर कालिख पोतकर, विचाराधीन बन्दियों पर इतना जुल्म हुआ?[32]

बीरसा और उसके आंदोलन को केन्द्र में रखकर महाश्वेता देवी ने वनवासियों पर ढाए गए कहर का प्रतिशोध किया है। पूरे उपन्यास में विरोध का यह स्तर प्रतिध्वनित हुआ है। इस विरोध और प्रतिशोध के अलावा बीरसा के माध्यम से उपन्यासकार ने मानवीय संबंधों का अत्यंत संवेदनशील चित्रण किया है। इसमें बीरसा और उसकी माँ, बीरसा और साली तथा बीरसा और अमूल्य के अंतरंग संबंधों का मर्मस्पर्शी और भावनाओं से भरा चित्रण है। इसमें बीरसा और उसकी माँ के बीच का स्नेह और प्रेम मार्मिक बन पड़ा है। बीरसा को सब भगवान मानते हैं पर माँ के लिए तो वह बेटा मात्र है। जिस प्रकार यशोदा अपने पुत्र कृष्ण की विराटता और दिव्य रूप से परिचित होने के बावजूद उसे अपने बेटे के रूप में ही देखती है उसी प्रकार बीरसा की माँ करमी एक ओर अपने बेटे के 'ईश्वरत्व' को देख सहम भी जाती है, पर जब नींद में वह अपने बेटे को छटपटाते देखती है तो उसका दिल रो उठता है और भगवान होने के बावजूद बीरसा को माँ की गोद में ही सुख की अनुभूति होती है।

हाँ रे बीरसा! दुनिया का दुःख तू समझता है, लेकिन जो माँ तुझे दुनिया में लायी, उसका दुःख नहीं समझता? तू भगवान बना, यह अच्छा है! लेकिन अब बाप, तू जिस राह पर चला है, उस राह पर जाने से सरकार तुझे मार डालेगी।

---

32 वही, पृ. 273

सरकार नहीं रहेगी, माँ!

नहीं रहेगी!

नहीं, माँ! हमारा देश फिर हमारा होगा। तुझे सब मिल जाएगा। सारा मुंडा देश जीतकर तुझे ला दूँगा। तू दुःख क्यों मना रही है?

करमी रोते-रोते बोलीः कल से तू फिर सबका हो जाएगा। मुझे तेरे पास, कोई जाने भी न देगाः आज मेरे पास थोड़ा सो ले। तुझे एक बार कलेजे से लगा लूँ।

ठूँठ वृद्धा करमी पृथ्वी के इस देवता को कलेजे से लगाकर लेटी रही। बाहर ठंडक थी; उत्तरी हवा चल रही थी। करमी के मौन रुदन की तरह जंगल हवा के थपेड़ों से विलाप करने लगा।[33]

उपन्यास के विषय से ही उसकी संरचना निर्धारित होती है। इस उपन्यास का कथ्य और प्रतिपाद्य है - अंग्रेजी शासन का प्रतिरोध और आजादी की जंग। इस जंग में आजादी के दीवानों को कुचल दिया जाता है, पर सुलगती आग नहीं बुझ पाती है। सुलगती आग की इस कथा की शुरुआत और अंत बीरसा की मौत से होती है। आरंभ में बीरसा को मौत से जूझते दिखाया गया है और अंत में उसका प्राणांत होता है।

मौत से जूझते बीरसा की कहानी ही कई अवलोकन बिंदुओं से प्रस्तुत की गई है। कभी उपन्यासकार ठेठ किस्सागो की तरह कहानी कहने लगती हैं, कभी चलते-फिरते दृश्य सामने आने लगते हैं, कभी अमूल्य, सुनारी, धानी मुंडा आदि पात्रों के अवलोकन बिंदुओं के सहारे कदम आगे बढ़ाती हैं। उपन्यास के अंत में उपसंहार जोड़ा गया है। यह उपन्यासकार के यथार्थवादी आग्रह का परिणाम है। उपन्यास में इस तरह उपसंहार जोड़ा जाना आम प्रचलन नहीं है। पर यह इस उपन्यास का सार्थक 'जोड़' है। उपसंहार बीरसा के सहपाठी और जेल के डिप्टी अमूल्य के अवलोकन बिंदु के रूप में प्रस्तुत किया गया है। बीरसा

33 वही, पृ. 145

अमूल्य को कभी स्वीकार नहीं कर पाता। जेल में देखकर भी वह उसे नहीं पहचानता। वह उसे उसी 'दिकू' व्यवस्था का अंग मानता है जिन्होंने उनका सर्वस्व हर लिया है। लेकिन अमूल्य बीरसा का आदर करता है। वह अपने स्तर पर उसकी मदद भी करता है। उसके अवलोकन बिंदु से उपन्यासकार ने अंग्रेजों की नीयत, नीति और न्याय के ढोंग को उघाड़ कर रख दिया है। और इस संदेश के साथ उपन्यास समाप्त होता है:

"मैं लिख रहा हूँ। मेरे बिलकुल नीचे से नदी बहती है। मैं अन्तर में उसकी बात सुन सकता हूँ। पथरीली धरती, बिना फल के पेड़ों के जंगल का वन, क्षितिज तक लहरों से खेलते पहाड़! मेरे शरीर से बरफीली हवा टकराती है। वे सब मुझसे कहते हैं: हम जिस तरह चिरकाल से हैं, संग्राम - बीरसा का संघर्ष - भी वैसा ही है। धरती पर कुछ समाप्त नहीं होता - मुंडारी देश, धरती, पत्थर, पहाड़, वन, नदी, ऋतु के बाद ऋतु का आगमन - संघर्ष भी समाप्त नहीं होता, इसका अंत हो ही नहीं सकता। पराजय से संघर्ष का अंत नहीं होता। वह बना रह जाता है, क्योंकि मानुस रह जाता है, हम रह जाते हैं।"

'मैं सुन रहा हूँ। अभी भी विश्वास नहीं कर पा रहा हूँ, लेकिन सुनते-सुनते, तुम्हारी माँ को देखते-देखते, एक दिन विश्वास कर सकूँगा, यह भी मालूम है, बीरसा! तो अभी सुनूँ ही? उलगुलान का अंत नहीं। बीरसा का मरण नहीं। बीरसा का मरण.....!'

'मुझे सुनने दो। सुनना सीखे बिना मैं विश्वास कैसे करूँगा?'[34]

लेखक - तकषि शिवशंकर पिल्लै, अनुवादिका - श्रीमती भारती विद्यार्थी, प्रकाशन वर्ष 1959, प्रकाशक - साहित्य अकादमी, नई दिल्ली

लेखिका - महाश्वेता देवी,, अनुवादक - जगत शंखधर, प्रकाशन वर्ष 1979, प्र.- राधाकृष्ण (पेपरबैक्स) प्रकाशन प्रा. लि. जी-17, जगतपुरी, दिल्ली - 51

34 वही, पृ. 279-280